धार्मिक आडंबर और प्रेमचंद का प्रतिरोध

डॉ. आभा जैन

हिंदी विभाग

बाबा गंगादास राजकीय महिला महाविद्यालय, शाहपुरा (जयपुर)

प्रेमचन्द के काल में भारत में हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों की समस्या काफी जटिल थी । उस समय भारत एक विदेशी पूंजीवादी साम्राज्यवादी सत्ता के अधीन था, जिसका हित भारत को गुलाम बनाए रखने में था। अंग्रेज शासक तब तक यह अच्छी तरह समझ चुके थे कि हिन्दू-मुसलमानों को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा करके ही स्वाधीनता आन्दोलन को कमजोर किया जा सकता है, और इसका सबसे सरल उपाय था उनकी साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारना । तत्कालीन साम्राज्यवादी वर्ग का भी हित इसी में था कि हिन्दू और मुसलमान साम्प्रदायिक झगड़ों में उलझकर अपनी असल समस्याओं को भूले रहें । अंग्रेज शासकों की इस साजिश के फल स्वरूप भारत के विभिन्न भागों में अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए जिनमें हत्या, आगजनी, बलात्कार आदि अनेक अमानवीय कृत्य हुए । प्रेमचन्द ने सम- कालीन जीवन की सच्चाई को देखा और अपनी रचनाओं के माध्यम से उसका विश्लेषण किया ।

प्रेमचन्द के संपूर्ण साहित्य पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि वे कभी भी हिन्दू मुसलमानों के मध्य बढ़ते हुए विद्वेष के हिमायती नहीं रहे, उन्होंने अपने निबन्धों में, कथा-साहित्य में सांप्रदायिकता का डटकर विरोध किया और खासतौर से उपन्यासों में ऐसे पात्रों का सृजन किया जो हिन्दू मुस्लिम संबंध के रूप में ऐसी ज्योति जगाते है जो साम्प्रदायिक भावना को भुलाने में व सद्भाव का रास्ता दिखाने में सक्षम है । वे दोनों धर्मों में निहित बुराइयों का पर्दाफाश करते हैं, और इसीके साथ-साथ धर्म को अपनी संकीर्णता से बाहर निकलने का, उन हदों को पार करने का संदेश भी देते हैं जो साम्प्रदायिक भावना में वृद्धि करती है । धार्मिक संकीर्णता के प्रति आक्रोश भी उनके साहित्य में दृष्टिगोचर होता है।

समाज के उद्धार के लिए प्रेमचन्द जी धर्म को सभी प्रकार की काराओं से मुक्त कराकर ऐसे खुले वातावरण में लाने के हामी है जहां वह घुटन से मुक्त हो, जिसके अनुयायी दूषित मनोवृत्तियों से सर्वथा रहित हो । उसके परिणाम स्वरूप संकीर्णता का तिरोभाव हो और एक ऐसा वातायन खुले जिससे स्वच्छ वायु प्रवेश करे।

शोषण करने वाले तथाकथित धार्मिक नेता सभी प्रकार के आडंबरों के मध्य रहकर जीवन यापन करते हैं, प्रेमचंद जी ने इन आडंबरों को भी उपहास का पात्र बनाया है ।

धार्मिक आडंबरों का उपहास

प्रचलन के आधार पर धर्म के दो रूप देखने को मिलते है आंतरिक और बाह्य । ये दोनों रूप केवल हिन्दू धर्म में नहीं अपितु विश्व के सभी धर्मों में मिलते है । धर्म के बाह्य रूप में बाह्याचार के साथ कुछ आडंबर भी होते हैं । इन आडंबरों में ही आगे चलकर कुछ कुप्रथाएँ भी आकर मिल जाती है इसके बाद प्रायः ऐसा होता है कि धर्म का वास्तविक रूप तो पीछे छूट जाता है और इन कुप्रथाओं और कुछ मिथ्याचारों को ही स्वार्थी लोग अधिकाधिक प्रचार करने और उनकी आड़ में भोलीभाली जनता को ठगने का कार्य करने लग जाते है।

प्रेमचन्द ने धर्म का अमानुषिक शोषण ब्राह्मणों की रूढ़ श्रेष्ठता, श्राद्ध, तीर्थ ,व्रत, पंडा, पुरोहित वर्ग की स्वार्थपरता एवं पाखंडपूर्ण मान्यताओं की कटु आलोचना की ओर धर्म की आड़ में समाज के नैतिक पतन का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया । उन्होंने धर्म और ईश्वर की रुढ़ परिकल्पना का निषेध करके नैतिकता का मानव जीवन के संदर्भ में औचित्य स्थापित किया । इन्होंने धर्म के बाह्य रूप का खंडन किया । मूर्तिपूजा दान, व्रत आदि का विरोध किया । मूर्तिपूजा की निस्सारता एवं व्यर्थता संबंधी विचार 'प्रेमाश्रम' में मिलते हैं । दान की निस्सारता को उन्होंने 'रंगभूमि' में दिखाया है "दान आलस्य का मूल हे और आलस्य सब पापों का मूल है । कम से कम पोषक तो अवश्य है ही । दान नहीं, अगर जी चाहता हो तो मित्रों को एक भोज दे दें । " । प्रेमचंद जी धर्म के बाह्याडंबर का विरोध करते हुए भी धर्म की शक्ति में विश्वास रखते हैं। वे धर्म का अर्थ कर्तव्य से लेते हैं और जो अपने कर्तव्य का पालन ईमानदारी से करता है उनकी दृष्टि में वही सबसे बड़ा धार्मिक है, वही पूज्य और ईश्वर के निकट है । वे जन्मना उच्च और निम्न जाति के प्रचलित जाति व्यवस्था को नहीं मानते । उनका आदर्श पात्र अमरकान्त कहता है - "मैं जाँत पात नहीं मानता माताजी । जो सच्चा है वह चमार भी हो तो आदर के योग्य है । जो दगाबाज, झूठा, लंपट हो वह ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नहीं । "इसी बात को शब्दांतर से गोदान का ब्राह्मण पात्र मातादीन आत्मा के शुद्धभाव से पवित्र हो जाने पर कहता है - "मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूँ । जो अपना धरम पाले वही ब्राह्मण, जो धरम से मुँह मोड़े वही चमार है । " अर्थात् प्रेमचन्द जी धर्म की प्रतिष्ठा

तो चाहते थे किन्तु वे बाह्याडंबर के विरोधी थे, अर्थात् वे तो मात्र धर्म के विकृत रूप के विरोधी है । धर्म के आंतरिक एवं वास्तविक रूप के अर्थात् त्याग, सेवा, शुद्धाचार, सत्य, अहिंसा और प्रेम के वे सदा समर्थक रहे हैं और उनकी दृष्टि में यही धर्म है।

यद्यपि प्रेमचन्द जी मूर्तिपूजा के विरोधी है किन्तु फिर भी वे यह मानते हैं कि व्यक्ति जब किन्हीं कारणों से परेशान हो उठता है तो उस समय वह सच्चे हृदय से ईश्वर के प्रति आकृष्ट हो उससे कुछ कहना चाहता है । ऐसी स्थिति में मूर्ति पूजा ढकोसला नहीं शांति पाने का एक उपाय है । इसीलिए वे इस स्थिति में मूर्तिपूजा को भी धार्मिकता की सीमा में उसके विशुद्ध भाव के कारण मान लेते हैं - जब पूर्णा आश्रम के बाग में थोड़ी सी जमीन साफ करके एक घरौंदा सा बनाती है और फूल पत्तों से सजाकर उसमें कृष्ण की मूर्ति स्थापित करती है तो उसके जीवन को सहारा देने वाली सच्ची श्रद्धा और उपासना के सामने प्रेमचन्द के वास्तविक पात्र भी सिर झुका देते हैं । प्रेमचन्द की जनता से यह सच्ची सहानुभूति है । " वस्तुतः यह मात्र धर्म के बाह्याडंबर और ढकोसले के लिए की गई मूर्तिपूजा नहीं है । यहाँ' प्रेमचन्द का आस्थावादी दृष्टिकोण प्रकट होता है ।

धार्मिक पाखंडों के विरुद्ध प्रेमचन्द में आर्यसमाजी जोश था, किन्तु पुनरुत्थानवादी सनक से वे कोसों दूर थे । राजनैतिक क्षेत्र में जितना वर्ग संघर्ष तेज होता गया, उतना ही उन्हें यह ज्ञात होता गया कि यह स्वर्ग, नरक, ईश्वर और प्रारब्ध सब अमानवीय विधान है और इसका आशय शोषण व्यवस्था को बनाए रखना है । उन्होंने सामाजिक परिवर्तन को खुली आंँखों से देखा और कर्मभूमि में गजनवी के मुँह से कहलवाया - "मजहब का दौर खत्म हो रहा है, बल्कि यों कहो कि खत्म हो गया है सिर्फ हिन्दुस्तान में इसकी कुछ जान बाकी है । यह मुआशयात का दौर है । अब कौम में दार व नदार, मालिक और मजदूर अपनी-अपनी जमातें बनाएंगे । "

सूर्य-ग्रहण और चन्द्रग्रहण जो प्राकृतिक क्रियाएँ हैं उन पर हिन्दू जनता की अज्ञानता पर उन्होंने दुःख प्रकट किया था । ग्रहण के अवसरों पर स्नान की दुर्गति से वे क्षुब्ध होते थे । अजमेर में दयानन्द निर्वाण अर्धशताब्दी मनाई गई, वे इससे दुखी थे कि जहां देश के करोड़ों लोगों को सूखा चना भी मयस्सर नहीं वहां हवन में दस हजार रुपये खर्च करने का क्या तुक है ? वास्तव में प्रेमचन्द ने अपने पूरे जीवन काल में समाज की मर्यादाओं को झूठी पड़ते देखा था । समाज ढोंगी, साधु महात्माओं, झाड़ फूंक वालों, खान-पान और छुआछूत पर टिका है । समाज में बस प्रायश्चित करना, गोबर खाना, गंगाजल पीना, दान पुण्य, तीर्थ व्रत यही सब कुछ रह गया था और धर्म की असली जड़ कट गई थी । यह धर्म शहरों में नहीं था जहां शिक्षा और ज्ञान का प्रकाश फैला हुआ समझा जाता था ।

प्रेमचन्द ने देखा था कि सारे तीर्थ स्थल ठगों के अड्डे और पाखंडियों के अखाड़े बन कर रह गये हैं, "जिधर देखिए धर्म के ढोंग का बाजार गर्म है, गली गली पुजारी और भिक्षुक पूरे नगर के नगर इन्हीं जीवों से आबाद है । जिनका इसके सिवा कोई उद्यम नहीं कि धर्म का ढोंग रचकर बेवकूफ भक्तों को ठगे । प्रेमचन्द जब हिन्दू समाज के परम पवित्र तथा मानवीय मन्दिरों की ओर दृष्टिपात करते थे तब उनका हृदय कांप उठता था जहां भक्ति की, ज्ञान की, आत्मसाधन की तथा तपस्या की निर्बल धारा बहकर लोगों के जीवन को सुन्दर और सुखकर बनना चाहिए वहां आज दुराचार, पापाचार और धृष्टता तथा दृष्कृत्यों का केन्द्र देखकर आत्मा रो उठती है ।

धर्मोपजीवी और धार्मिक रूढ़ियाँ सामाजिक विकास में बाधक हैं । जब कभी प्रथाओं के विरुद्ध आवाज उठाई जाती है, प्रचार किया जाता है, पुरानी और लज्जाजनक रूढ़ियों को मिटा डालने का यत्न किया जाता है, या कोई देशहितकारी नियम या बिल पास किया जाता है तो ये धर्म के ठेकेदार समय को न देखते हुए अपने नीच स्वार्थ साधन के लिए ऐसे कार्य के विरुद्ध अपनी ताकत लगा देते हैं। ऐसे व्यक्तियों के कुकृत्यों' ने भारतीय संस्कृति के विकासशील तत्वों को भी हास्यास्पद बना डाला है । धर्म के नाम पर कैसे-कैसे पाखंड किए जाते थे, वह पिंडदान और महापात्रों के नखरे और वह बिरादरी वालों का मूंछों पर ताव देकर दावतें उड़ाना कितना गलीज और घृणास्पद है । दुर्भाग्य- वश इन पाखंडियों को ब्राह्मण कहा जाता है जो ब्राह्मणत्व से उतना ही दूर है । तिलक ,पोथीपत्रे, कथा भागवत, धर्म संस्कार, स्नान पूजा, जनेऊ आदि का चलन होते हुए भी उनकी मर्यादाएँ झूठी पड़ चुकी थी । ब्राह्मण कुलीनता की डींग मारते और राम नाम की खेती काटते थे । ब्राह्मण अब भी अपने को बहुत बड़ी चीज समझता था और बम्हनई के बोझ से समाज को दबाए रखना चाहता था । मानवता का नाम भर लेना उसके मन, वचन और कर्म सभी को विषाक्त कर देता था । प्रेमचन्द ने अपने समय की परिस्थितियों को देखते हुए ब्राह्मणों को धर्म का लुटेरा कहा है । बिरादरी का जबर्दस्त भय समाज में बना हुआ था। बिरादरी से पृथक् जीवन की कल्पना ही न की जा सकती थी । शादी, ब्याह, मुंडन छेदन, जन्म-मरण, सब कुछ बिरादरी के हाथ में था । बिरादरी से अलग जीवन विश्रृंखल समझा जाता था । इस सम्बन्ध में मातादीन का प्रसंग और हरखू का व्यंग्य इस समस्या पर अत्यन्त सुन्दर प्रकाश डालते है । हरखू साठ साल का बूढ़ा है । ये ही साठ साल प्रेमचन्द ने 'गोदान' में अपनी कला के पग से नापे हैं - "तुम हमें बाम्हन नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं । तुम हमें बाम्हन बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है । जब यह सामरथ नहीं है तो फिर तुम भी चमार बनो, हमारे साथ खाओ पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो, हमारी इज्जत लेते हो तो अपना धरम हमें दो ।" मातादीन के मुंह में हड्डी का टुकड़ा डाला जाना उस समय को देखते हुए बहुत बड़ी और साहस की बात है ।

पाखंडी साधुओं के कुकर्मों से उनके विकृत धर्मोपजीवी आचरण के हाथों हमारा सामाजिक अहित ही नहीं राष्ट्रीय अहित भी हो रहा है । प्रेमचन्द जी अपना सारा जीवन हिन्दू जाति को पुरोहितों ,पुजारियों, पंडे और धर्मोपजीवी कीटाणुओं से मुक्त कराने में अर्पण कर देते हैं । आजकल धर्म तो धूर्त्तों का अड्डा बना हुआ है । इस निर्मल संसार में एक से एक मगरमच्छ पड़े हुए हैं । लम्बी-लम्बी जटाएँ, लंबे-लंबे तिलक और लंबी-लंबी दाढियां तो महज पाखंड हैं और लोगों को धोखा देने के लिए हैं ।

प्रेमचन्द जी किसी परंपरागत धर्म में विश्वास नहीं करते थे । इस सम्बन्ध में उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान मुहम्मद आकिल साहब ने लिखा है : "प्रेमचन्द जी ने मुझ से कहा कि मुझे रस्मी मजहब पर कोई एतबार विश्वास नहीं है । पूजा-पाठ और मन्दिरों में जाने का मुझे शौक नहीं । शुरू से मेरी तबियत का यही रंग है, बाज लोगों की तबियत मजहबी होती है, बाज लोगों की लामजहबी । मैं मजहबी तबियत रखने वालों को बुरा नहीं कहता, लेकिन मेरी तबियत रस्मी मजहब को पाबंदी को बिल्कुल गँवारा नहीं करती ।"

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में साम्प्रदायिक समन्वय की चेष्टा की है। यह समन्वय उन्होंने कई स्तरों पर किया है । एक ओर जहांँ वह साम्प्रदायिकता का विरोध करते हैं वहीं दूसरी ओर धार्मिक संकीर्णता के प्रति तीव्र आक्रोश व्यक्त करते हैं । धर्म के नाम पर हो रहे शोषण को देखकर प्रगतिशील प्रेमचन्द जी भला कैसे आंँखें मूंद सकते थे तभी उन्होंने धार्मिक आडम्बरों' का उपहास उड़ाते हुए धर्मादृधृत शोषण का विरोध किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

उपजीव्य ग्रन्थ :

1. कर्मभूमि : प्रेमचन्द, 1968, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।
2. कायाकल्प : प्रेमचन्द, 1969, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।
3. गबन : प्रेमचन्द, 1971, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।
4. गोदान : प्रेमचन्द, 1976, सरस्वती प्रेल, इलाहाबाद ।
5. प्रेमाश्रम : प्रेमचन्द, 1979, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।
6. रंगभूमि : प्रेमचन्द, 1980, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।
7. सेवासदन : प्रेमचन्द, 1980, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

नाटक :

1. कर्बला : प्रेमचन्द, 1958, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ।
2. प्रेम की वेदी : प्रेमचन्द, 1978, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।
3. संग्राम : प्रेमचन्द : संवत् 1979, हिन्दी पुस्तक एजैंसी, 126 हरिसन रोड, कलकत्ता ।

सहायक ग्रन्थ:

इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थ:

1. आज का भारत : रजनी पामदत्त
2. कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभि सीतारामय्या, 1948, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
3. खण्डित भारत : डॉ०राजेन्द्र प्रसाद, 1947, ज्ञानमण्डल है पुस्तक भण्डार लिमिटेड, बनारस
4. भारतीय चिंतन परम्परा : के दामोदरन, 1979, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रालि, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली ।
5. भारतीय धर्म एवं संस्कृतिः बुद्ध प्रकाश
6. राष्ट्रीयता और समाजवाद : आचार्य नरेन्द्र देव, 1959
7. स्वतन्त्रता संग्राम : बिपिनवंद्र अमलेश त्रिपाठी, वरुण दे, 1972, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली ।

आलोचना सम्बन्धी ग्रन्थ:

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास - सं• भीष्म साहनी, रामजी मिश्र, 1976 जाकिर हुसैन कालेज प्रकाशन, अजमेरी गेट, दिल्ली-6
2. उपन्यासकार प्रेमचन्द - सं० डॉ०सुरेशचन्द्र गुप्त, रमेशवन्द्र गुप्त, 1966, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, -6
3. उपन्यासकार प्रेमचन्द - श्याम सुन्दर घ्घोष, 1964, भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा दिल्ली ।
4. कलम का सिपाही : अमृतराय, 1962, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद ।
5. गोदान - अध्ययन की समस्याएँ - डॉ०गोपाल राय, 1966, ग्रन्थ निकेतन, पटना
6. प्रेमचन्द - गंगाप्रसाद विमल, 1968, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि दिल्ली ।

7. प्रेमचन्द: अध्ययन की नई दिशाएँ - कमल किशोर गोयनका, 1981, साहित्य निधि, सी, 38 ईस्ट कृष्ण नगर, दिल्ली
8. प्रेमचन्द और अछूत समस्या - कांति मोहन, 1982, जनसुलभ साहित्य प्रकाशन ग्राम सादतपुर, गोकुलपुर दिल्ली
9. प्रेमचन्द और उनका युग- रामविलास शर्मा , 1967, राजकमल प्रकाशन प्रा लि, दिल्ली-6
10. प्रेमचन्द और गांधीवाद: श्री रामदीन गुप्त, 1961, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली
11. प्रेमचन्द और प्रगतिशील लेखन: सं• विजय गुप्त, 1980, प्रगतिशील लेखक संघ, न्यू पंचशील होटल अंबिकापुर ।
12. प्रेमचन्द का कथा संसार- सं० डॉ०नरेन्द्र मोहन, 1980, सरस्वती विहार जीटी रोड, शाहदरा, दिल्ली
13. प्रेमचन्द के पात्र- सं• कोमल कोठारी, विजयदान देथा, 1970, अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36 अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली - 6
14. प्रेमचन्द: घर में : शिवरानी देवी, 1956, आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली - 6
15. प्रेमचन्द: चिन्तन और कला - सं. इन्द्रनाथ मदान, सरस्वती प्रेस, बनारस
16. प्रेमचन्द: जीवन, कला और कृतित्व : हंसराज रहबर, 1962, आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 6

International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation